[Conference-Composition of Colours :December,2014] ISSN- 2350-0530
DOI: https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v2.i3SE.2014.3601

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

जन जातीय रंग कला एवं सामाजिक जीवन

डॉ. निशा जैन
प्राध्यापक – समाजशास्त्र,
शा. महारानी लक्ष्मीबाई स्नात. कन्या महा., किला भवन, इन्दौर

जनजातीय समाज सभ्य एवं विकसित समाज की तुलना में भिन्न प्रकृति के होते हैं। उनकी अपनी विषिष्ट संस्कृति होती है। प्रत्येक जनजाति को स्वयं की संस्कृति उन्हें दूसरी जनजातियों से भिन्न बनाती है। परम्परागत रूप से विरासत में प्राप्त हुई संस्कृति उनके जीवन का आधार है। इस विषिष्ट संस्कृति कें कारण वे अपनी बहुत सी आवष्यकताएं पूर्ण करते हैं। विभिन्न सामाजिक उत्सवों रीति रिवाजों में जनजातीय कला की झलक दिखलाई देती है।प्रत्येक जनजाती के सदस्य कला एवं रंगों के माध्यम से जीवन की खुषियां मनाते हैं जो उनके परम्परागत वस्त्रों, रंग बिरंगे आभूषणों एवं श्रृंगार से दिखलाई देता है। इस कला के लिए उन्हें किसी प्रषिक्षण की आवष्यकता नहीं होती है इसका ज्ञान उन्हें स्वतः पीढ़ी दर पीढ़ी प्राप्त होता चला जाता है।

संपूर्ण भारत के विभिन्न क्षेत्रों में कई जनजातियां निवास करती है, वहाँ की भौगोलिक विषेषताओं के आधार पर जनजातीय जीवन एवं कला दिखलाई देती है इसी कला एवं रंगों का संयोजन कर भारतीय जनजातियों ने अपनी विषिष्ट पहचान बनाई है। जनजातीय कला का संबंध सामाजिक जीवन से तो है ही परंतु उसका धार्मिक आधार भी है। जनजातीय कला हमें विविध रूपों में परिलक्षित होती है कहीं इसका स्वरूप मांडना के रूप में है तो कहीं गोदना, टोटम एवं भित्ती चित्रों के रूप में। जनजातीय कला एवं रंगों का प्रभाव ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों में फैषन के रूप में लोकप्रिय है। षहरी युवाओं में टेटू का प्रचलन, वस्त्रों में बाघ प्रिंट कलमकारी आदि की पसंद आम बात हो रही है। षहरों में लगने वाले मेलों में जनजातीय कला के स्टॉल षहरवासियों के खास आकर्षण का केंद्र होते हैं। इन जनजातीय कला के माध्यम से हमें उस देष, काल एवं जनजातियों की विषेषताओं एवं संस्कृति को समझने में आसानी होती है। जनजातीय समाज अषिक्षित होता है अतः कला एवं रंगों के माध्यम से अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति करता है।भारत की कुछ जनजातीय कला विष्वस्तर पर अपनी पहचान स्थापित कर चुकी है जैसे राजस्थान की बंधेज कला, बिहार की मधुबनी चित्रकारी, वर्ली चित्रकला, नार्थ मध्यप्रदेष की मांडना एवं सांझी कला, महाराष्ट्र की अटपना एवं रांगोली तंजोर कला, तंजावर की पट्टकला उड़िसा, राजस्थान की मिनीऐचर, कलम कला केरल की इत्यादि।

जनजातीय कला के विविध रूप –

आदिवासी महिलाओं में तिल गुदना –भारतीय लोक संस्कृति में तिल और गुदना ये दोनों ही सौन्दर्य के प्रमुख उपादान है। प्रत्येक आदिवासी महिला अपने षरीर के विभिन्न हिस्सों पर तिल को चित्रित करती है जिससे उसके सौन्दर्य में अभिवृति होती है। तिल आदिवासी महिला के श्रृंगार का प्रमुख अंग है वहा गोदना प्रथा भी आदिवासियों में प्रचलित है। षरीर के विभिन्न अंगों पर स्थाई रूप से चित्रों को बनवाना आदिवासियों की प्रमुख परम्परा है उनकी यह मान्यता है कि मृत्यु के पष्चात् सब कुछ यहीं रह जाता है सिर्फ यह गोदना ही है जो उनके षरीर के साथ जाता है। इस गोदने को आदिवासी स्त्रियां अपना स्थाई आभूषण मानती है। गोदने के रूप में बिन्दु, त्रिभुज, बिच्छु, चितल एवं चीलों की आकृति उभारी जाती है। निम्न जातियों में चित्रांकन की भांति गोदना प्रथा जीवित है। पोलीनेसिया में यह प्रथा एक कला के रूप में चरमोत्कर्ष पर है इसके विपरीत आस्ट्रेलिया और अफ्रिका की मूल निवासियों में यह अपने मूल स्वरूप में अभी तक है। अरब की स्त्रियों में यह एक फैषन की तरह है। अफ्रिका में जिसके षरीर पर जितने अधिक चिन्ह पाये जाते हैं वह उतना ही अधिक युद्धप्रिय एवं साहसी माना जाता है। कहीं–कहीं जाति अथवा दल के परिचय के लिए भी गोदना चिन्हों का उपयोग होता है। आदिवासियों में गोदना गुदवाने की पीछे धार्मिक, सामाजिक एवं स्वास्थ्य विषयक मान्यताऐं चिरकाल से जीवित है।

आदिवासियों में गोत्र चिन्ह एवं निषेध –आदिवासियों में गोत्र चिन्हों के प्रति अत्याधिक लगाव, श्रद्धा एवं आदर भाव होता है। वे गोत्र चिन्हों को देवता के प्रतीक समझते हैं। गोत्र चिन्हों को षरीर पर, घर के दरवाजे पर चित्रित करने के पीछे उसके प्रति कृतज्ञता एवं भय दोनों का एकीकरण होता है। धार्मिक एवं सामाजिक उत्सव, नृत्य आदि के क्षणों में गोत्र चिन्हों की उपेक्षा नही की जा सकती। मदिरापान पूर्ण गोत्र चिन्हों का स्मरण किया जाता है जिन व्यक्तियों के षरीर पर गोत्र चिन्ह अंकित नहीं है उन्हें धार्मिक एवं षुभ कार्यों की अनुमति नहीं है ऐसी मान्यता है। गोत्र चिन्ह वाले पषु–पक्षी का मॉस भक्षण नहीं किया जाता है अतः आदिवासी कला एवं रंग चित्रों का परिचय हमें गोत्र एवं गोत्र संबंधी निषेधों के पालन से भी होता है। प्रत्येक जनजातीय

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

समूह के भिन्न–भिन्न गोत्र चिन्ह होते हैं जो उन्हें बहुत सी सामाजिक मर्यादाओं का पालन करने को बाध्य करते हैं। आदिवासी चित्रकला में भूत–प्रेतों से रक्षा, अभिषापों से मुक्ति, पारिवारिक समृद्धि इत्यादि का ध्यान रखा जाता है।

भित्ति चित्र –भित्ति चित्रों में मांगलिक अवसरों को अधिक मधुर व आनंदमय बनाने के लिए गाय, बैल, मोर, सर्प, आम्रवृक्ष, षेर आदि के चित्र चित्रित किये जाते हैं। इन चित्रों से अलंकृत दिवारें कृतज्ञता का भाव दर्षाती है कि इन सभी जीवों का आदिवासियों पर उपकार है। इन चित्रों में मृत आत्माओं की भी कल्पना की जाती है इनका मानना है कि पूर्वजों की आत्माएँ भूत–प्रेतों एवं देवी–देवताओं के रूप में रोगों को दूर करने व खेतों में पैदावार बढ़ाने मे सहायक है। अतः इनके प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए दिवारों पर चित्र बनाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त आभूषणों पर निर्मित चित्र, मिट्टी के बर्तनों पर विविध रंगों की चित्रकारी आदिवासी चित्रकला के बाह्य स्वरूप है।

भारत में गुफा चित्र भी आदिवासियों की ही देन है। झारखंड की षबर जनजाति द्वारा सबसे पुराने गुफा चित्र बनाये गये है। हजारी बाग से लगभग 42 कि.मी. दूर इस्कों के पास पहाड़ी गुफाओं में प्राचीनतम षैलचित्र पाए गए जो बगैर प्रषिक्षण के स्वाभाविक रूप से बनाये गए हैं। सिंधु घाटी की सभ्यता की जानकारी भी वहां प्राप्त षिलालेखों एवं चित्रों से प्राप्त होती है जो संताल जनजाति के पूजा चिन्हों से मिलते–जुलते दिखाई देते हैं।

आदिवासी रंगकला की वर्तमान में प्रासंगिकता –
वर्तमान समाज में आधुनिकता चरम सीमा पर है। संचार माध्यमों ने आदिवासियों को प्रभावित किया है। वे परम्परागत कला को छोड़कर नवीन जीविकोपार्जन के साधन ढूंढने लगे हैं जिससे बेरोजगारी बढ़ी है। जनजातियों की सामाजिक स्थिति में गिरावट आती जा रही है पर संस्कृति ग्रहण की स्थिति निर्मित हो रही है। अतः षासकीय प्रयासों से इनकी चित्रकला का संरक्षण किया जाऐ, जीविकोपार्जन हेतु कला का प्रचार–प्रसार व प्रोत्साहन दिया जाए। चित्रकला को जीवित रखने हेतु कच्चा माल उपलब्ध करवाया जाऐ एवं निर्मित वस्तुओं को बाजार उपलब्ध करवाया जाऐ, लोक कलाकारों द्वारा षहरी क्षेत्रों में लोककला का प्रषिक्षण भी रोजगार हेतु दिया जा सकता है। लोककला अषिक्षित समाजों में जनजागृति का कार्य भी कर सकती है। विभिन्न सामाजिक समस्याओं के प्रति जन चेतना इन चित्रों के माध्यम से जगाई जा सकती है।

संदर्भ –

(1) आदिवासी प्रकाषन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय
(2) आदिवासियों के बीच श्रीचंद जैन
(3) कला संसार – स्वामी प्रकाषक